सिविल पुनरीक्षण याचिका

मुख्य न्यायमूर्ति मेहर सिंह और न्यायमूर्ति बलराज तुली के समक्ष

भारत संघ और अन्य, याचिकाकर्ता

बनाम

ओम प्रकाश गुप्ता, *उत्तरदाता*

सिविल निगरानी संख्या 426 सन 1968

26 अगस्त, 1968

*साक्ष्य अधिनियम (*1872 का 1) - धारा 121 *से* 131 - *विशेषाधिकार प्राप्त दस्तावेज की सामग्री* - क्या प्राथमिक या द्वितीयक साक्ष्य के किसी भी तरीके से साबित किया जा सकता है - धारा *129 - अभिव्यक्ति "*कोई नहीं"- एक मुवक्किल की व्याख्या जो दूसरे पक्ष को अपने कानूनी सलाहकार का पत्र दिखाती है - ऐसी अन्य पार्टी - क्या इसके संबंध में साक्ष्य पेश कर सकती है।

अभिनिर्णीत किया गया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 121 से 131 के प्रावधानों के तहत जिस विशेषाधिकार का दावा किया जाता है और अनुमति दी जाती है, वह दस्तावेज नामक कागज की शीट के संबंध में नहीं है, बल्कि उसके तथ्यों के संबंध में है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि एक दस्तावेज के तथ्यों जिसके बारे में विशेषाधिकार को बरकरार रखा गया है, उसे किसी भी मामले में प्राथमिक या द्वितीयक साक्ष्य के किसी भी तरीके से न्यायालय के रिकॉर्ड में नहीं लाया जा सकता है। यह निषेध पूर्ण है। विशेषाधिकार प्राप्त दस्तावेज़ की सामग्री को किसी भी द्वितीयक साक्ष्य द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

(पैरा 6)

अभिनिर्णीत किया गया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 129 में "कोई नहीं" शब्द की सही व्याख्या यह है कि किसी भी मुवक्किल को उसके और उसके कानूनी पेशेवर सलाहकार के बीच हुए किसी भी गोपनीय संचार को अदालत को प्रकट करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा जब तक कि मुवक्किल खुद को गवाह के रूप में पेश नहीं करता है, जिस मामले में उसे किसी भी ऐसे संचार का खुलासा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है जो अदालत को ज्ञात होने के लिए आवश्यक प्रतीत हो सकता है और उन्होंने जो भी सबूत दिए हैं, वे उन्हें स्पष्ट करते हो ।

(पैरा 10)

अभिनिर्णीत किया गया कि यदि कोई मुवक्किल खुद दूसरे पक्ष को अपने कानूनी सलाहकार का पत्र दिखाता है, तो उक्त दूसरा पक्ष इस आधार पर उसके संबंध में सबूत नहीं दे सकता है कि मुवक्किल ने इसे गुप्त नहीं रखा था। धारा 129 तब लागू होती जब मुवक्किल ने खुद ही कटघरे में घुसकर गवाही दी होती। दूसरे पक्ष को विशेषाधिकार प्राप्त दस्तावेज की सामग्री को पेश करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

(पैरा 10)

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत श्री ओपी गुप्ता उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, गुड़गांव के 10 अप्रैल, 1968 के आदेश के विरुद्ध निगरानी याचिका *दायर की गई है, जिसमें अभिनिर्णीत किया गया है कि 14 मार्च, 1965 का* यू.ओ. विशेषाधिकार *प्राप्त दस्तावेज नहीं है*

और जैसा कि यह ठीक से साबित हो चुका है, इसलिए प्रदर्शित होने का हकदार है।

सी. डी. दीवान, डिप्टी एडवोकेट जनरल, हरियाणा सरकार, याचिकाकर्ताओं की ओर से।

आर.अन.मितल, प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता।

निर्णय

यह पुनरीक्षण याचिका गुड़गांव के उप-न्यायाधीश के दिनांक 10 अप्रैल, 1968 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है और इसे 23 मई, 1968 को मानीनीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा एक खंडपीठ के समक्ष स्वीकार कर लिया गया था क्योंकि पुनरीक्षण याचिका में शामिल कानून का बिन्दु सामान्य महत्व का है और इस बिन्दु पर सीधे इस न्यायालय का कोई निर्णय नहीं है।

2) तथ्य यह है कि ओम प्रकाश गुप्ता ने भारत सरकार और एक अन्य के खिलाफ मुकदमा दायर किया और उस मुकदमे में भारत संघ से चार दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का आह्वान किया, जो निम्नानुसार विस्तृत हैं: –

    1. यू.ओ. नं. 204/एसआर/65, दिनांक 8 मार्च, 1965, विधि मंत्रालय के सचिव श्री बी. एन. लोकुर के पुनर्वास सचिव द्वारा जारी;
    2. यू.ओ. दिनकित 14 मार्च, 1965, से विधि मंत्रालय के सचिव श्री बी. एन. लोकुर द्वारा पुनर्वास विभाग के सचिव को लिखित पत्र।
    3. प्रतिवादियों द्वारा डी.जी.ई.टी. को वादी के रोजगार के लिए लिखा गया पत्र; और
    4. विधि विभाग के संयुक्त सचिव श्री एच. सी. डग्गा द्वारा वेतन निर्धारण के संबंध में मुख्य बंदोबस्त आयुक्त, नई दिल्ली को दिनांक 13 अक्टूबर, 1965 को भेजा गया पत्र।

3) भारत संघ ने विशेषाधिकार का दावा किया और इन दस्तावेजों को पेश करने से इनकार कर दिया। उस आपत्ति के बावजूद, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने 30 जनवरी, 1967 को इन दस्तावेजों को पेश करने के लिए एक आदेश पारित किया। उस आदेश के खिलाफ, भारत संघ ने इस न्यायालय में एक निगरानी 151 सन 1967 दायर किया, जिसे न्यायमूर्ति महाजन द्वारा 26 अप्रैल, 1967 को अनुमति दी गई, क्योंकि विद्वान न्यायामूर्ति के अनुसार सभी दस्तावेज विशेषाधिकार के हकदार थे और उन्हें पेश करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता था।

4) वादी ने ट्रायल कोर्ट में एक दस्तावेज दायर किया, जिसे 'ए' चिह्नित किया गया था और जिसे उन्होंने 14 मार्च, 1965 के यू.ओ. की प्रति बताया था, जो कानून मंत्रालय के सचिव श्री बी. एन. लोकुर से पुनर्वास विभाग के सचिव को दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि पुनर्वास विभाग के सचिव श्री मथानी ने श्री लोकुर का मूल पत्र उन्हें दिखाया और उन्होंने पेंसिल में इसकी एक प्रति बनाई। उन्होंने पेंसिल कॉपी से बनाई गई एक निष्पक्ष प्रति पेश की और विद्वान ट्रायल कोर्ट ने उन्हें इसे पेश करने और अपने स्वयं के बयान से साबित करने की अनुमति दी। भारत संघ के विद्वान वकील द्वारा एक आपत्ति ली गई थी कि 'ए' चिह्नित दस्तावेज अदालत में पेश नहीं किया जा

सकता है, लेकिन विद्वान उप न्यायाधीश ने कहा कि विशेषाधिकार का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि सरकार को इसे पेश करने के लिए नहीं बुलाया गया था। विद्वान उप न्यायाधीश के अनुसार, 'ए' चिह्नित दस्तावेज वादी के बयान से साबित हो गया था और प्रदर्शित होने का हकदार था और उसने उस पर प्रदर्शनी चिह्न 'पीए' लगाया। भारत संघ ने इस आदेश से व्यथित महसूस करते हुए यह पुनरीक्षण याचिका दायर की है।

5) 'पीए' चिह्नित प्रति को अदालत में पेश करने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी और न ही इसे साबित या प्रदर्शित किया जा सकता था क्योंकि वादी के अनुसार यह स्वीकार किया गया है की यह एक प्रति की एक प्रति थी, अर्थात, अदालत में जो निष्पक्ष प्रति पेश की गई थी, वह पेंसिल कॉपी से बनाई गई थी, जिसे वादी ने श्री लोकुर के मूल पत्र से बनाने का आरोप लगाया था जिसे श्री मथानी ने उन्हें दिखाया था। इस आधार पर ट्रायल कोर्ट को उक्त दस्तावेज को रिकॉर्ड पर लेने से इनकार कर देना चाहिए था और इसे साबित करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए थी।

6) जिस विशेषाधिकार का दावा किया जाता है और अनुमति दी जाती है, वह कागज की शीट के संबंध में नहीं है जिसे दस्तावेज़ कहा जाता है, बल्कि इसकी सामग्री के संबंध में है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि एक दस्तावेज के तथ्य जिसके बारे में विशेषाधिकार को बरकरार रखा गया है, उसे किसी भी मामले में प्राथमिक या द्वितीयक साक्ष्य के किसी भी तरीके से न्यायालय के रिकॉर्ड में नहीं लाया जा सकता है। यह पूर्णत निषेध पूर्ण है। विशेषाधिकार प्राप्त दस्तावेज़ की सामग्री को किसी भी द्वितीयक साक्ष्य द्वारा साबित नहीं किया जा सकता है। भारत संघ के विद्वान वकील ने उनकी प्रस्तुतियों के लिए चैटरोन बनाम *परिषद में भारत के राज्य सचिव*[1] मामले में अपील के फैसले पर भरोसा किया है। उस मामले में वादी ने काउंसिल में भारत के राज्य सचिव के खिलाफ इस आधार पर मानहानि की कार्रवाई की थी कि राज्य सचिव के रूप में उनके द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के प्रदर्शन के दौरान राज्य के अवर सचिव को लिखित में किए गए एक संचार में वादी की पेशेवर प्रतिष्ठा, जो महामहिम के इंडियन स्टाफ कोर में एक कप्तान था, को प्रभावित करने वाले असत्य बयान शामिल थे। उस कार्रवाई में, उस संचार के संबंध में विशेषाधिकार का दावा किया गया था जिसे बरकरार रखा गया था। उस मामले में, केय,न्यायमूर्ति, ने लॉर्ड एलेनबोरो की उक्ति को निम्नलिखित प्रभाव के लिए पुन: प्रस्तुत किया: –

"फिर यह कहा जाता है कि तथ्य यह है कि वादी द्वारा लॉर्ड लिवरपूल को प्रतिवादी के खिलाफ शिकायत की गई है, इस अवसर पर सबूत में रखा जाने वाला एकमात्र तथ्य है; लेकिन वादी के लिए उस तथ्य को प्राप्त करना सक्षम नहीं है, अगर इसे आधिकारिक पत्र में सन्निहित किया जाए। न ही इस तरह के पत्र का एक सार स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि वादी को पूरे या किसी के लिए हकदार नहीं होना चाहिए; और मुझे लगता है कि यह पूरा पत्र ली गई आपत्तियों के कारण स्वीकार्य नहीं है।

केय, न्यायमूर्ति, ने पुन कहा : –

"यह बिल्कुल सच है कि उस मामले में वास्तव में तय किया गया सवाल केवल पत्र के साक्ष्य में स्वीकार्यता के बारे में था, निर्णय यह था कि न तो पत्र पेश किया जा सकता है और न ही इसकी सामग्री का द्वितीयक साक्ष्य दिया जा सकता है..... होम बनाम *बेंटिक*[2] के मामले में यह निर्णय लिया गया कि सेना में एक अधिकारी के आचरण की जांच के लिए कमांडर-इन-चीफ द्वारा आयोजित की जाने

---

[1] (1895) 2 क्यू.बी. 189.

[2] 2 बी और बी. 130.

वाली कोर्ट ऑफ इन्क्वायरी के अध्यक्ष द्वारा बनाई गई रिपोर्ट एक विशेषाधिकार प्राप्त संचार थी, और यह कि इसे परिवाद के लिए कार्रवाई के परीक्षण में सबूत के रूप में ठीक से खारिज कर दिया गया था, और इसकी एक कार्यालय प्रति भी ठीक से खारिज कर दी गई थी। इस निर्णय में मुझे यह निष्कर्ष भी शामिल लगता है कि, भले ही ऐसा कोई दस्तावेज रखा जा सकता है, यह पूरी तरह से विशेषाधिकार प्राप्त होगा और इस पर कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

ए. एल. स्मिथ, न्यायमूर्ति ने उस मामले में कहा: –

"मामलों में यह माना गया है कि, भले ही उस व्यक्ति द्वारा इस तरह के दस्तावेज को पेश करने पर कोई आपत्ति नहीं की गई थी, जिसकी हिरासत में यह था, मुकदमे में न्यायाधीश का कर्तव्य होगा कि वह हस्तक्षेप करे, और इसे पेश करने की अनुमति देने से इनकार करे: और यह आगे माना गया है कि, यदि इसकी सामग्री के द्वितीयक साक्ष्य देकर उस कठिनाई को दूर करने का प्रयास किया गया था, तो न्यायाधीश को ऐसा करने से रोकना चाहिए। इसलिए, यदि इस कार्रवाई को परीक्षण के लिए जाने की अनुमति दी गई थी, तो वादी संभवतः मानहानि की शिकायत को साबित किए बिना सफल नहीं हो सकता था, और न्यायाधीश इसे साबित होने से रोकने के लिए बाध्य होगा।

कानून का एक ही सिद्धांत *एंकिन* बनाम *लंदन और नॉर्थ ईस्टर्न रेलवे कंपनी*[3] में इन शब्दों में पृष्ठ 530 पर कहा गया है कि : –

"मेरी राय में, यदि यह सार्वजनिक हित के विपरीत है, तो एक मूल दस्तावेज प्रस्तुत करना, एक प्रति पेश करने के लिए सार्वजनिक हित के विपरीत होना चाहिए जिसे दस्तावेज़ के निर्माता ने अपनी जानकारी के लिए रखा है।"

7) इस मामले पर न्यायमूर्ति त्यागी ने जहांगीर *एम कर्सेटजी* बनाम *परिषद में भारत के राज्य सचिव*[4] में विचार किया था व कहा कि वादी द्वारा शिकायत किए गए प्रस्ताव को एक आधिकारिक संचार होने के नाते पूरी तरह से विशेषाधिकार प्राप्त था। इसे साक्ष्य के रूप में नहीं रखा जा सका या अदालत में पेश नहीं किया जा सका और इसका कोई द्वितीयक साक्ष्य नहीं दिया जा सका।

8) इस मुद्दे पर बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ (मुख्य न्यायमूर्ति चागला और न्यायमूर्ति भगवती) द्वारा लेडी *दीनाबाई दिनशॉ पेटिट* और *अन्य* बनाम *भारत का डोमिनियन और दूसरा*[5] के मामले में फिर से विचार किया था। उस मामले में, वादी ने एक हलफनामा दायर किया था जिसमें बॉम्बे के कलेक्टर से 20 अप्रैल, 1942 के पत्र की सामग्री को पुन: प्रस्तुत किया गया था, जबकि उस पत्र के संबंध में विशेषाधिकार का दावा किया गया था। वादी के वकील देसाई ने कहा कि दस्तावेज के तथ्यों से पता चलता है कि दस्तावेज विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था और इसे केवल इसलिए रोक दिया गया था क्योंकि यह वादी के मामले का समर्थन करता है। मुख्य न्यायमूर्ति चागला ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए कहा:-

"श्री देसाई भूल जाते हैं कि यदि सरकार द्वारा 20 अप्रैल, 1942 के पत्र के संबंध में विशेषाधिकार का दावा किया जाता है, जैसा कि वास्तव में उसने दावा किया है, तो हमें दस्तावेज़ को देखने या इसकी सामग्री पर विचार करने से रोक दिया जाता है। वादी की स्थिति

---

[3] (1930) 1 के.बी. 527

[4] आईजेएलआर (1903) 27 बॉम 189

[5] ए.आई.आर. 1951 बोम 72.

में इस तथ्य के कारण सुधार नहीं होता है कि यह बहुत संभावना है कि उन्होंने इस दस्तावेज़ की एक प्रति कुछ अयोग्य तरीके से प्राप्त की है। यदि दस्तावेज़ की मूल वस्तु को विशेषाधिकार प्राप्त है, तो निश्चित रूप से उस विशेषाधिकार को वादियों द्वारा सचिवालय से दस्तावेज़ की प्रतियां प्राप्त करके और अदालत को दस्तावेज़ के द्वितीयक साक्ष्य को देखने के लिए कहने से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। पक्षकार कभी-कभी इस तथ्य को नजरअंदाज कर देती हैं कि जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया है, विशेषाधिकार का पूरा सिद्धांत जनहित पर आधारित है, और हमें यह मान लेना चाहिए कि जब तक इसके विपरीत नहीं दिखाया जाता है, उस आधार पर विशेषाधिकार का दावा किया जाता है। उस पक्ष के आक्रोश को समझा जा सकता है जो महसूस कर सकता है कि दस्तावेज का खुलासा करने से इनकार करने से उसका उद्देश्य नष्ट हो रहा है, लेकिन इसका कोई कानूनी आधार नहीं है और शायद आक्रोश इतना स्पष्ट नहीं होगा अगर पार्टी यह समझने की जहमत उठाती है कि अदालतों को उन दस्तावेजों को देखने से क्यों रोका जाता है जिनके संबंध में राज्य विशेषाधिकार का दावा करता है।

अब्दुर रजाक *बनाम गौरी नाथ*[6] के मामले मे पंजाब उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने कहा कि:-

"जहां कोई शिकायत मौखिक या लिखित रूप में किसी आधिकारिक संचार पर आधारित है, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 123, धारा 124 या धारा 125 के दायरे में आती है, और प्राथमिक या प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा संचार को साबित करने की कोई संभावना नहीं है, मजिस्ट्रेट आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने में उचित है। आधिकारिक विश्वास में किए गए लिखित संचार की सामग्री के बारे में कोई द्वितीयक साक्ष्य स्वीकार्य नहीं है।

9) ये निर्णय यह पूरी तरह से स्पष्ट करते हैं कि विशेषाधिकार प्राप्त दस्तावेज़ की सामग्री को अदालत में प्राथमिक या द्वितीयक साक्ष्य के किसी भी तरीके से साबित नहीं किया जा सकता है।

10) वादी-प्रतिवादी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 121 से 131 विशेषाधिकार के मामले से संबंधित है और कुछ धाराओं में, उपयोग किए गए शब्द हैं "किसी को भी सबूत देने की अनुमति नहीं दी जाएगी" जबकि अन्य में "किसी को भी खुलासा करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा" और यह कि संबंधित दस्तावेज साक्ष्य अधिनियम की धारा 129 के दायरे में आता है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, "कोई नहीं" शब्द जिसके साथ यह खंड शुरू होता है, किसी भी व्यक्ति से संबंधित है जो सच नहीं है। मेरे अनुसार, सही व्याख्या यह है कि किसी भी मुवक्किल को उसके और उसके कानूनी पेशेवर सलाहकार के बीच हुए किसी भी गोपनीय संचार का खुलासा करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा, जब तक कि मुवक्किल खुद को गवाह के रूप में पेश नहीं करता है, जिस मामले में उसे किसी भी ऐसे संचार का खुलासा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है जो अदालत को उसके द्वारा दिए गए किसी भी सबूत को समझाने के लिए आवश्यक प्रतीत हो सकता है। विद्वान वकील के अनुसार, श्री मथानी श्री लोकुर के मुवक्किल थे और चूंकि श्री मथानी ने स्वयं वादी को श्री लोकुर का पत्र दिखाया, इसलिए वादी इस आधार पर इसके संबंध में सबूत दे सकता है कि श्री मथानी ने इसे गुप्त दस्तावेज नहीं रखा था। यह तर्क साक्ष्य अधिनियम की धारा 129 में इस्तेमाल की गई भाषा से उत्पन्न नहीं होता है। धारा 129 लागू

[6] (1910) 11 सी आर .ऍल .जे . 205

होती यदि श्री मथानी ने खुद गवाह-बॉक्स में प्रवेश किया होता और उसे गवाही दी होती। वादी को उस दस्तावेज की सामग्री पर गवाही देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जिसके बारे में इस न्यायालय द्वारा विशेषाधिकार को बरकरार रखा गया था।

11) ऊपर दिए गए कारणों के लिए, इस पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार किया जाता है। विद्वान ट्रायल कोर्ट के आदेश को रद्द कर दिया जाता है और यह आदेश दिया जाता है कि एक्जिबिट पीए के रूप में चिह्नित दस्तावेज़ को *रिकॉर्ड* से बाहर रखा जाना चाहिए और इसे वादी को वापस कर दिया जाना चाहिए और रिकॉर्ड पर नहीं रखा जाना चाहिए। याचिकाकर्ता को इस याचिका की लागत की अनुमति दी जाती है। वकील की फीस 75 रुपये है।

मेहर सिंह, मुख्य न्यायमूर्ति — मै सहमत हूँ।

आर.एन.एम.

अस्वीकरण : *स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।*

परीक्षित
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
महम, रोहतक,हरियाणा